Artistic Narration Vol. XVI No. 2 July.-Dec. 2025 ISSN (P): 0976-7444 (e): 2395-7247 Impact Factor 8.898 (SJIF)
https://doi.org/10.31995/an.2025.v16i02.029

कुमाऊँ की दृश्य कलाओं में प्रयुक्त प्रतीकः एक अध्ययन

डॉ. मनोज कुमार
ईमेलः*manojgbss@gmail.com*

Reference to this paper should be made as follows:
Received: 01-12-25
Approved: 16-12-25

डॉ. मनोज कुमार

कुमाऊँ की दृश्य कलाओं में प्रयुक्त प्रतीकः एक अध्ययन

Artistic Narration 2025,
Vol. XVI, No. 2,
Article No.29 Pg.205-211

Online available at:
https://anubooks.com/journal-volume/artistic-narration-dec-2025-vol-xvi-no2

Referred by:
DOI:*https://doi.org/10.31995/an.2025.v16i02.029*

सारांश

दृश्य कलाओं में विषय की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग प्रागैतिहासिक काल से ही हो रहा है। प्रतीक महत्वपूर्ण तब बन जाते हैं, जब किसी का सानिध्य पाकर उस व्यक्ति विशेष या वस्तु विशेष का परिचय देने में सहायक सिद्ध होते हैं। पाश्चात्य कला से लेकर भारतीय कला में भी प्रतीकों की महत्ता देखी जा सकती है। यही गुण कुमाऊँ की कला में भी देखने को मिलता है। प्रतीकों के अंकन की दृष्टि से यहाँ की कला का विशेष महत्व है। वास्तव में यहाँ के कलाकार प्रकृति के नैसर्गिक परिवेश में सम्पूर्ण भौतिक जगत को ही चित्रित करने की चेष्ठा करते हैं। इसी दृष्टि से हम कह सकते हैं, कि विचारों के आदान–प्रदान के लिए मनुष्य की भाषा का क्षेत्र सीमित हो सकता है, परन्तु कला का क्षेत्र विस्तृत है और सार्वभौम है। कला में मनुष्य को परमात्मा से मिलाने की असीम क्षमता है।

मुख्य शब्द

कुमाऊँ, प्रागैतिहासिक, लोक कला, अभिव्यक्ति व संस्कृति।

डॉ. मनोज कुमार

कुमाऊँ की कला में सबसे ज्यादा प्रतीक लोककला में प्राप्त होते हैं। जो सामान्य जन से जुड़ी हुई है। कला समीक्षकों की यही धारणा है, कि भारतीय कला की दोनों ही शैलियाँ शास्त्रीय एवं लोक में भारतीय जीवन प्रतिबिम्बित होता है। उसी प्रकार कुमाऊँ की कला शैलियों में भी कुमाऊँनी जीवन प्रतिबिम्बित होता है। संस्कृति के बिम्ब धर्म, दर्शन तथा क्षेत्रीय परम्पराएं इनमें अभिव्यक्ति हुई है। अपनी संस्कृति की झलक प्रस्तुत करने के उद्देश्य से कलाकारों ने कतिपय कार्य किये हैं। ये प्रतीक कुमाऊँ की वर्णमाला कहे जा सकते हैं। विभिन्न विचारों, परम्पराओं, मान्यताओं एवं विश्वास को इन प्रतीकों ने साकार किया है। वैसे भी देखा जाए तो कला जिस संस्कृति से संबंधित होती है, उसी का प्रतीक होती है। उस संस्कृति की मान्यताओं पर चलकर उसे आत्मसात् कर नये प्रतीकों की सर्जना करती रहती है साथ ही परम्परागत प्रतीकों को भी पीढ़ी दर पीढ़ी साथ लेकर चलती है।

कला प्रतीक न केवल विचारों को अभिव्यक्त करते हैं, वरन् आरक्षा एवं मांगलिक भावनाओं की संवृद्धि करते हैं। जहाँ ये कला प्रतीक किसी विशिष्ट विचार या भाव की सृष्टि के निमित्त नहीं भी होते हैं वहाँ भी ये अपने स्वरूप का मांगलिक प्रभाव डालते हैं और दर्शक के शारीरिक एवं मानसिक सौन्दर्यबोध का परिष्कार करते हैं।''[1]बात अगर कुमाऊँ के प्रतीकों की कि जाए तो सर्वप्रथम आदिम मानव से संबंधित प्रागैतिहासिक प्रतीक मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ते हैं। ''आदिम मानव, अच्छे लगने वाले मृग–पक्षियों के रूप, रंग वाले पत्थरों से चट्टानों पर अंकित किया करते थे। यहीं से प्रतीक का प्रारम्भ माना जाता है। जैसे–जैसे मनुष्य के विचार विकसित होते गये, वैसे–वैसे उनके प्रतीकों के रूप भी विकसित होते गये और उनकी संख्या बढ़ती गयी।''[2] कुमाऊँ में प्रागैतिहासिक प्रस्तर चित्रों में आदिम मानव ने मानव तथा पशु आकृतियों के अतिरिक्त पद्म, चक्र, सितारे, स्वास्तिक मानव हस्त चित्र, वृक्ष, पर्वत, नदी लताएँ लहरदार आलेखन आदि अनेक प्रतीक चिन्हों को अंकित किया है। इन प्रतीकों को वो अपने खाली समय में मनोरंजन के लिए बनाता होगा। कुमाऊँ की प्रागैतिहासिक कला में शिकार दृश्यों का अभाव है। यहाँ पर ज्यादातर चित्र पशुओं के तथा मानवाकृतियों को नृत्य व उल्लास मनाते हाथों में हाथ डाले बनाया गया है। इन प्रतीकों की पूजा भी की जाती थी। प्राकृतिक प्रकोपो से बचने के उद्देश्य से। अतः यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि प्रतीक पूजा के ही माध्यम से मूर्तिपूजा का विकास हुआ। प्रागैतिहासिक प्रतीकों का प्रयोग लोककला के अंतर्गत आज भी होता है। आरम्भिक भारतीय कला में प्रतीक का प्रयोग भाषा के रूप में हुआ है। जिन आकारों का प्रयोग लोक चित्रों में होता है, उनमें अनेक आकृतियों का अर्थ उस आकृति तक सीमित नहीं होता, बल्कि कुछ चित्रों से एक निश्चित कर्म का अर्थ प्रगट होता है। ऐसे चित्र उस भाव को व्यक्त करते हुए स्वयं प्रतीक बन जाते हैं। जैसे यदि कहीं ऐपण डाले जा रहे हैं तो किसी त्यौहार का संकेत है। यदि धुलिअर्ध्य की चौकी घर के आंगन में बनाई जा रही है तो विवाह का संकेत है कि घर में दुल्हे के लिए चौकी बनाई जा रही है। साधारणतः लोक चित्रकार इन प्रतीकों का अर्थ भले ही न जानते हो किन्तु प्रारम्भ में इनका प्रयोग निश्चित ही भाव अर्थ समझ कर ही हुआ होगा।

प्रागैतिहासिक लोक चित्रकला परम्परा में प्रयुक्त प्रतीकों का दार्शनिक अर्थ भी है। ''गुफा चित्रों में चित्र स्वयं वस्तु या व्यक्ति का स्थानापत्र था, सिर्फ चिन्ह नहीं, यहीं कारण है कि यह रहस्यात्मक जादुई शक्ति से सम्पन्न माना जाता था। यह बिम्ब न रहकर प्रतीक बन जाते हैं।''[3] ''प्रागैतिहासिक कला में प्रयुक्त स्वास्तिक की चार भुजाएँ अभय देती हुई विष्णु की चार भुजाओं की प्रतीक हैं। बीच–बीच में सृष्टिरूपी बिन्दु

https://doi.org/10.31995/an.2025.v16i02.029

है। इसकी खड़ी और आड़ी रेखाएं स्त्री और पुरूष की तुलना हमारे यहाँ चार आश्रमों, चार पुरूषार्थों तथा चार वर्णों और चार वेदों से की गई है। इसी प्रकार दीपक को ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। चक्र को ईश्वर की शक्ति का प्रतीक तथा पुष्प को सौन्दर्य, कोमलता और उल्लास का प्रतीक माना गया है। गुणित का निशान युद्ध का, लताएँ या गमले विकास तथा समृद्धि का, खड़ी पायी शान्ति का तथा सर्पाकृतियाँ विद्युत ज्योति के प्रतीक माने गये हैं।''[4]

''वास्तव में कला प्रतीकों के उद्भव की पृष्ठभूमि में सुरक्षा एवं कल्याण की भावना को ही स्वीकार किया गया है। इसीलिए शास्त्रीय कला की मूल पृष्ठभूमि लोककला ही रही है। जिन मांगलिक प्रतीकों को लोक कल्याण की नित्य उपासिका भारतीय नारी ने चुना, वे ही कालान्तर में वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, दन्तकला, मुद्राकला, मृदभाण्ड कला, लेखन कला आदि विविध माध्यमों में मांगलिक बन गये।''[5]

''कुमाऊँ में दुर्गा का चित्रण कब से आरम्भ हुआ यह कहा जाना तो मुश्किल है। परन्तु शुंग–काल के पाषाण निर्मित अनेक छल्ले प्राप्त हुए हैं, जिनमें देवी की आकृतियां हैं। इन छल्लों पर कहीं–कहीं देवी के साथ सिंह की आकृति भी बनायी गयी है। दुर्गा विषयक अत्यन्त प्राचीनतम चित्र, एलोरा के 'गुफाचित्र' के पूर्व का कोई भी नहीं मिलता है। सिर्फ पहाड़ी कुछ अंचलों को छोड़कर क्योंकि दुर्गा विषयक भित्ति चित्र, अधिकशांतः मंदिरों की भित्तियों पर ही अंकित थे।''[6]

प्रतीकों का स्वरूप

कुमाऊँ की लोक कला में अति प्राचीन समय से जिन प्रतीकों का परम्परागत रूप से प्रयोग होता है, उन मंगल प्रतीकों के अतिरिक्त देवाकृतियों, पशु–पक्षियों तथा मानवाकृतियों का अंकन भी प्रतीकात्मकता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

1. स्वास्तिक – ''भारतीय कला में सभी क्षेत्रों की कला–परम्परा का मुख्य प्रतीक 'स्वास्तिक' रहा है। स्वास्तिक मानव जीवन का विलक्षण प्रतीक है। स्वास्तिक की एक विश्वव्यापी परम्परा रही है।''[7] ''स्वास्तिक मानव समाज के कल्याण का प्रतीक है स्वास्तिक पूजा का चलन हमें आदिम लोक संस्कारों से लेकर, शैल चित्रों, सिन्धु घाटी की सीलों, जैन–बौद्ध तथा हिन्दू धर्म प्रतीकों के रूप में मिलता है। इससे देश और काल दोनों की दृष्टि से एक अति व्यापक परम्परा का ज्ञान होता है।''[8] भारतीय साहित्य के विवरणों से ज्ञात होता है, कि स्वास्तिक कल्याणकारी शब्द है। इसीलिए यह कल्याण का प्रतीक है। हिन्दू, बौद्ध, जैन सभी धर्मों में इसे कल्याणकारी प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसकी उपस्थिति में दुःख दूर होता है। जीवन में सुख आता है, दूषित ऊर्जा से सुरक्षा होती है।

''भारतीय कला और संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार– चार दिशाओं में व्याप्त विश्वमण्डल के चतुर्भुजी रूप का यह प्रतीक सूर्य से संबंधित है। यह मण्डल प्राची (पूर्व), दक्षिणा (दक्षिण), प्रतीची (पश्चिम) और उदीची (उत्तर) दिशाओं से बना है और सूर्य उसका मध्य है। इन दिशाओं के विकास से स्वास्तिक बनता है। यह मानव और विश्व का सर्वोत्तम मांगलिक प्रतीक है।''[9]

पद्म या कमल – कुमाऊँ की चित्रकला में पद्म को भी यदा–कदा देखा जा सकता है। पद्म भी एक प्रतीक चिन्ह है। ''अलंकरण की दृष्टि से इसके अनेक रूप हैं और कई अर्थ भी कमल को सृष्टि का प्रतीक माना जाता है, और सृष्टि के रचियता ब्रह्मा का जन्म इसी से हुआ मानते हैं। भागवतों में संसार को भू–पद्म कोष कहा गया है और सृष्टि कमल से उत्पन्न हुई मानी जाती है। वैदिक मान्यता में हिरण्यगर्भ को

जो स्थान दिया गया है, वही स्थान भागवत दर्शन में पद्म को मिला है।''[10] सूर्य के प्रतीक की तरह विकसित पद्म को भरहुत, सांची तथा अमरावती बौद्ध घरों पर बनाया गया है। अजन्ता के चित्रों, शिल्प तथा गुप्त कालीन प्रतिमाओं में कमल का अंकन प्राप्त होता है।

क्लश – भारतीय कला में कला (घट) एक महत्वपूर्ण प्रतीक है यह प्रतीक लोकजीवन से ही पूरी तरह परम्परा एवं धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में आया। क्योंकि घट या कला मानव की सर्जनात्मक बुद्धि का एक प्रमाण है। आरम्भिक युग में कभी यह अन्न संग्रह के लिए उपयोग में लाया गया किन्तु बाद में घड़े से भरे जल को जीवन या प्राण रस बताया गया। कला एक प्रकार से पूर्णघट का प्रतीक स्वरूप है, जिसे फूल–पत्तियों से सजाया जाता है। फूल–पत्तियों से समृद्ध पूर्णघट–सुख सम्पत्ति और जीवन की पूर्णता का प्रतीक है। उसके मुख पर लहराती हुई पत्तियाँ और पुष्प जीवन के नानाविध आनन्द और उपभोग हैं। मानव ही पूर्णघट है। उसी प्रकार विराट विश्व भी पूर्णकुम्भ है। दोनों ही पूर्णता के सूचक हैं।''[11]

शंख – यह एक शुभ मंगल प्रतीक माना जाता है। कोई भी धार्मिक कार्य हो, पूजन के समय शंख जरूर बजाया जाता है। भित्ति चित्रों में चौक के अलंकरणों में शंख का अंकन एक मंगल प्रतीक के रूप में किया जाता है। कुमाऊँ में लोककला के अंतर्गत बनने वाली सूर्य चौकी में शंख का अंकन किया जाता है तथा अलंकरण के लिए भी इसका अंकन किया जाने लगा है। ये प्रतीक आज आधुनिक कला में बहुतायत से प्रयोग किये जाते हैं। ऐपणों को सजाने के लिए उनके किनारों में भी शंख बनाये जाते हैं।

शुक (तोता) – कुमाऊँ में बनने वाले ज्योर्तिपट् में शुक का अंकन देखने को मिलता है। जन्माष्टमी का पट्टा बहुत आकर्षक बनाया जाता है। जिसमें अन्य विषय वस्तुओं के साथ सुक–सांरग का अंकन भी किया जाता है। उपनयन संस्कार पर बनने वाले ज्योर्तिपट्ट व विवाह के अवसर पर बनने वाले ज्योतिपूजा में भी दो शंकों को चित्रित किया जाता है। यह किसी कार्य के पूर्ण होने पर भी प्रतीक तथा वैवाहिक जीवन का प्रतीक भी माना जाता है। तोते का चित्रण विवाह में मुख्य रूप से किया जाता है। व्रतों में वृक्षों के ऊपर इसका अंकन किया जाता है। विवाह के निमंत्रण का एक संस्कार गीत तोते पर आधारित होता है। अतः निमंत्रण के प्रतीक के रूप में साथ–साथ हरी–भरी डाली और फलों से लदे वृक्षों के साथ जीवन की खुशहाली की अभिव्यजंना के रूप में भी यह प्रतीक अंकित किया जाता है।

कल्पवृक्ष – कुमाऊँ की लोककला में वृक्ष का चित्रण भी देखा जा सकता है। ये कल्पतरू मुख्यतः नागपंचमी के पट्ट जन्माष्टमी के पट्ट, ज्योर्तिपट्ट आदि में अंकित मिलते हैं। कल्पतरू का अंकन मानवांछित फल प्राप्ति व दो वृक्षो का साथ में अंकन वैवाहिक जीवन का द्योतक माना जाता है। इसी प्रकार पीपल की प्रतीकात्मकता है यह वैदिक प्रतीक है, सिन्धु घाटी सभ्यता से प्राप्त मोहरों पर इसका अंकन मिलता है। यह देवताओं का निवास तथा दैवीय वृक्ष है।'' इस प्रकार वृक्ष से बढ़कर कोई धार्मिक प्रतीक नहीं है। जो इतनी लम्बी इतनी अवधि तक सर्वव्यापि, सप्रमाणिक और अमंधरीति से संसार की कला में अभिव्यक्ति किया जाता रहा हो।''[12]

चक्र – कुमाऊँ की कला का एक प्राचीन प्रतीक चक्र भी है। जिसे काश्ठकला तथा लोककला के अन्तर्गत देखा जा सकता है। देखा जाए तो चक्र स्वस्तिक का ही एक गतिमान रूप है जो मानव सभ्यता के विकास से प्रतीक के रूप में संसार में पूज्य भाव के साथ स्वीकार किया गया था। चक्र मानव सभ्यता के विकास की कुन्जी है। चक्र गति का बोधक रहा है। चक्र का अविष्कार लोक या ग्राम्य संस्कृति की देन है।

https://doi.org/10.31995/an.2025.v16i02.029

सूर्य, चन्द्र व तारे – सूर्य, चन्द्र ऐसे प्रतीक हैं। जो चित्रकला में आरम्भिक काल से ही मिलते हैं। ये वैदिक प्रतीक हैं। वास्तव में ये सर्दी और गर्मी के दो रूप हैं। भारतीय कला चिन्तन में ''सूर्य उच्च विज्ञान या बुद्धि का प्रतीक है और चन्द्र इन्द्रियानुगामी मन या प्रदाता का प्रतीक है।''[13] अर्थर्ववेद में इन्हें अग्नि के दो रूप कहा गया है। स्त्रियों के लगभग सारे व्रत व त्योहार सूर्य व चन्द्र की गतियों के आधार पर संचालित होते हैं। अमावस और पूर्णिमा ऐसी तिथियॉ हैं। जो समय की गणना का आधार हैं। सम्पूर्ण लोक धर्म के आधार पर चलते हैं। सूर्य एंव चन्द्र लोक के आधार तथा जीवन हैं।

दीया (दीपक) : दीपक ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। किसी भी शुभ कार्य के अवसर पर अपने ईष्ट देव की स्तुति के लिए दीपक जलाने की परम्परा प्राचीन काल से ही रही है। जलते हुए दीपक का अंकन मुख्य रूप से प्रकाश पर्व पर किया जाता है। उस दिन तेल भरे दीपक को घर के प्रत्येक कमरे में तथा देवास्थानों पर जलाने की परम्परा है। दीपावली के शुभ अवसर पर ऐसी मान्यता है, कि दीपक में लक्ष्मी जी का निवास है। वास्तविकता तो यह है कि यह अंधकार को मिटाने तथा अज्ञान को दूर करने वाला मांगलिक प्रतीक है। प्रत्येक घर, परिवार, जाति, धर्म में इसकी मांगलिकता है। प्रागैतिहासिक मानव अपने निवास शैलाश्रयों को प्रकाशित करने के लिए हड्डियों, मिट्टियों के दीये में चर्बी जलाया करते थें। जिससे वो जंगली जानवरों से बच सके।

पशु – ''वैसे तो भारतीय संस्कृति, कला एंव परम्परा में पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी पशु–पक्षियों को किसी न किसी गुणवत्ता के आधार पर मांगलिक माना गया है, वैदिक परम्परा में चार पशु प्रमुख रहे हैं। हाथी, अश्व, वृषभ, सिंह, जो चारो दिशाओं के स्वामी तथा बौद्ध परम्परा में बुद्ध के जीवन की चार महत्वपूर्ण घटनाओं जन्म (हाथी), गृहत्याग (अश्व), ज्ञान प्राप्ति (वृषभ), तथा कुल (सिंह) के प्रतीक के रूप में पूज्य रहे हैं।''[14]

मछली – ''प्रत्येक मांगलिक एंव धार्मिक अवसरों पर भूमि, भित्ति, पट, अंग, पात्र, आदि के चित्रण में भारतीय कला का लोकप्रिय प्रतीक दो मछलियों की जोड़ी है, जिसे साहित्यिक दृष्टि से मीन, मिथुन, कहा जाता है। मछली को धार्मिक एवं मांगलिक प्रतीक माना गया है। यह शुभ का प्रतीक है। इसीलिए प्रत्येक शुभ कार्य में मछली को देखना तथा उसका अंकन साथ ही भोजन में मछली का प्रयोग भी शुभ का ही वैचारिक आधार है।''[15]

सर्पाकृतियाँ – कुमाऊँ में अन्य क्षेत्रों की भांति ही श्रावण शुक्ल पंचमी को नागपंचमी त्यौहार मनाया जाता है। जिसके उपलक्ष्य में महिलाएँ सुन्दर ग्रामीण नागपचंमी पट्टों का निर्माण करती हैं। जन्माष्टमी के पट्ट में भी कालिया दमन का दृश्य केन्द्र का विषय रहता है। नागपंचमी के अवसर पर यहाँ सर्पों की पूजा शैव मंदिरों में जाकर पूजा अर्चना की जाती है। क्योंकि नाग भूषण शिव अपने कंठ में नागों को धारण किये हुए रहते हैं। अतः यथार्थ आकृतियों पर आघृत वस्तुएँ भी प्रतीक बन जाती हैं।

डिकरे – डिकरे मिट्टी से निर्मित शिव परिवार की मृण मूर्तियों को कहा जाता है। हरेला कर्क संक्रान्ति को मनाया जाने वाला पर्व है। यह पर्व कृषि से संबंधित है। तथा शिव–पार्वती की अराधना इस पर्व पर विशेष रूप से की जाती है। मिट्टी से बनाये शिव–पार्वती और उनके परिवार से युक्त मूर्तियों को डिकरे कहा जाता है। पूजा के लिए निर्मित सृष्टि के प्रतीक रूप में इन डिकरों की पूजा की जाती है, और मक्का, गहत, जौ, लाई आदि मिट्टी में बोकर उनकी पूजा की जाती है। ईश्वर से प्रार्थना की जाती है कि हमारे फसलों की रक्षा करना व सुख समृद्धि बनाये रखना।

देवी–देवताओं का अंकन – कुमाऊँ में देव भावना इतनी व्यापक है कि समस्त प्रदेश को ही देवभूमि कहा जाता है। कुमाऊँ में धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा रही है। प्रतिदिन पूजा करने व्रत–उपासना, संस्कारों और पर्वों आदि से जुड़े रहने के कारण यहाँ के लोगों के कर्म और पूजा पद्वति आदि अनुष्ठानों द्वारा सम्पन्न होते हैं और अनुष्ठानों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा ये लोक चित्र ही होते हैं। ''कही देवी–देवताओं की प्रतिमूर्ति तो कही प्रतीकों को अंकित कर अपनी–अपनी मनोकामना पूर्ण करने की दृष्टि से पूजा करते हैं। देवी–देवताओं के अंकन में शेषशायी विष्णु पट्ट में विष्णु लक्ष्मी में ब्रह्मा का सृष्टि के प्रतीक रूप का अंकन होता है। यह अंकन विशेष रूप से एकादशी के दिन किया जाता है। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि भगवान विष्णु इस दिन से चार मास तक क्षीर सागर में शयन करते हैं।

थापे – किसी भी शुभ अवसर पर चाहे त्यौहार हो, पर्व सभी पर कुमाऊँ में त्यौहारों के अनुसार अलग–अलग थापे बनाने की परम्परा है। थापे लोककला की एक विधा है, जिसमें प्रतीकों के माध्यम से अंकन किया जाता है।

कुमाऊँ के प्रागैतिहासिक चित्रण, प्राकृतिक चित्रण, भवन निर्माण, काष्ठ उत्कीर्णन या फिर लोककला हो सभी को तकनीकी दक्षता के साथ बनाया गया है। प्राकृतिक चित्रण में पारदर्शिता का गुण विशिष्ट है। नियंत्रित तुलिका संचालन तथा चित्रण माध्यम के रूप में पुस्तकीय चित्रण में पहले कागज को गिलाकर नम किया जाता है, फिर हल्की तानों से गहरी तानों की तरफ बढ़ते हैं। प्रकाश को दिखाने के लिए या फिर सफेदी दिखाने के लिए कागज को छोड़ा जाता है। जिसमें रंगों की शुद्धता बनी रहे। बैंगनी, हरे, नीले, पीले आदि तानों के प्रयोग से चित्रकारों ने चित्रों में अलौकिक ज्योति को चित्रण करने का प्रयास किया तथा अपनी लगन व वर्षों के रियाज से वे सफल भी हुए। चित्रों में विरोधी तानों का प्रयोग भी दिखता है। जिसमें बैंगनी और आसमानी रंग के हल्के तानों के साथ कही हरियाली के लिए सशक्त तुलिकाघात द्वारा गहरा प्रयोग किया गया है, तो विरोध में कागज की सफेदी छोड़ती निर्मल धवल गंगा का प्रवाह दिखता है।[16]

स्थापत्य की दृष्टि से भी कुमाऊँ के मंदिरों में तकनीक का बेजोड़ प्रदर्शन देखने को मिलता है। बिना सीमेन्ट, रेता, लोहा इत्यादि के ये मंदिर अपनी तकनीक के कारण कई सौ वर्षों से अटल खड़े हैं, जिनमें अल्मोड़ा का पार्वतीश्वर मंदिर जो सत्रहवीं शताब्दी में बना था। आज भी ज्यों का त्यों खड़ा है। इस मंदिर के निर्माण में तकनीकी तौर पर देवकुल शैली, सर्वतोभद्र शैली तथा नागर शैली का प्रयोग किया गया है, जिसमें स्थानीय पत्थरों का प्रयोग किया गया है।

संदर्भ

1. विश्वकर्मा, प्रीति : पूर्वाचंल की लोककला, पृ0 सं0–61
2. मिश्र, जर्नादन : भारतीय प्रतीक विद्या, पृ0 सं0–1
3. केसरीदास अर्जुन : मिर्जापुर के गुफा चित्रों का सांस्कृतिक और तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 सं0–32
4. विश्वकर्मा, प्रीति : पूर्वाचंल की लोकला, पृ0 सं0–61
5. डॉ0, द्विवेदी प्रेमशंकर : वाराणसी की भित्ति चित्रकला में दुर्गा, पृ0 सं0–38
6. विश्वकर्मा, प्रीति : पूर्वाचल की लोककला, पृ0 सं0–62
7. डॉ0 भनावत, महेन्द्र : स्वास्तिक मानव चेतना का ज्योति जयंति रूप, (रंगायन, जनवरी 1983), पृ0 सं0–23

https://doi.org/10.31995/an.2025.v16i02.029

8. अग्रवाल, वासुदेवशहरण : भारतीय चित्रकला, पृ0 सं0–64
9. डॉ0 उत्तमा : वाराणसी के लोकचित्रों में प्रयुक्त होने वाले मंगल प्रतीकों का अंकन, पृ0 सं0–95
10. मठपाल, यशोधर : कुमाऊँ की चित्रकला, पृ0 सं0–33
11. श्रीवास्तव, ए0एल0 : मीन मिथुन, भारतीय कला प्रतीक, पृ0 सं0–63
12. पोघार हनुमान प्रसाद : गोस्वामी तुलसीदास जी रचित दोहवली (अनु0), पृ0 सं0–155
13. सक्सेना, कौशल किशोर : कुमाऊँ कलाशिल्प एवं संस्कृति, पृ0 सं0–94
14. उनियाल, हेमा : कुमाऊँ के प्रसिद्ध मंदिर, पृ0 सं0–48
15. डॉ0, द्विवेदी, प्रेमशंकर : चित्रकला के विविध आयाम, पृ0 सं0–99
16. चौहान इतिका : भारतीय चित्रण परम्परा में आखेट, पृ0 सं0–101